ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-5 No. 19 May 2020

राजा राममोहन राय : समकालीन सामाजिक प्रवृत्तियाँ एव सामाजिक सुधार

डॉ. आशा पारे

कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नही कर सकता जब तक कि उसका समाज, उसकी जनता प्रगतिशील और उदारवादी न हो। समाज का पिछड़ापन राष्ट्र की प्रगति में बाधक सिद्ध हुआ है। किसी भी देश का पतन उसके सामाजिक पतन में निहित है। प्रत्येक समाज में रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं का निर्वाह किया जाता है। कई पुराने रीति-रिवाज समय के परिवर्तन के साथ परिष्कृत होते जाते हैं तो कई लुप्त भी हो जाते हैं। उनका स्थान नये-नये विचारों से जुड़े रिवाजों और परम्पराओं के द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। प्रत्येक समाज एक मर्यादा और संस्कारों के बंधनों से बँधा रहता है। ये संस्कार कुछ धर्म पर आधारित होते है और कुछ सभ्यता की देन। धर्म समाज के साथ राष्ट्र की प्रगति में भी एक अहम् भूमिका निभाता है। इसलिये धर्म के साथ समाज और राष्ट्र का एक गहरा सम्बन्ध है और धर्म के आधार पर समाज में व्याप्त कुरीतियाँ और बुराईयाँ राष्ट्र की एकात्मकता को और उद्भव को प्रभावित करती है।

प्रत्येक समाज में जब-जब धर्म की विकृतियाँ उत्पन्न हुई है, सामाजिक स्तर पर भी उन कुरीतियों का, उन विकृतियों का प्रभाव देखने को मिला है। धर्म के नाम पर समाज में चेतना उत्पन्न करना कोई मुश्किल कार्य नहीं है किन्तु यदि कोई विकृति धार्मिक मान्यता प्राप्त कर लेती है तो उसे दूर करना और जन-मानस से उस विकृति को उखाड़ फेंकना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। इसी असम्भव कार्य को सम्भव बनाने का बीड़ा उठाया था राममोहन राय ने। वे यह जान चुके थे कि धार्मिक सुधार ही सामाजिक सुधार का सूत्रपात करते हैं, साथ ही ये सुधार राष्ट्र की प्रगति और मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। इसलिये बाल्यकाल से ही उनका ध्यान धर्म की ओट में छिपी सामाजिक बुराईयों की ओर गया था। उन्होंने जब धार्मिक सुधार का बीड़ा उठाया तो उसके साथ ही सामाजिक सुधारों की ओर भी उनका पूरा ध्यान रहा। वे धर्म पर आश्रित कुरीतियों को भी जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये कृत संकल्पित हो गये। तत्कालीन समाज बहुत सी कुरीतियों से पीड़ित था।

प्रत्येक समाज में धर्म को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और समाज को एक सशक्त आधार प्रदान करने में धर्म महती भूमिका निभाता है। हिन्दू धर्म और दर्शन का प्रभाव भी तत्कालीन भारतीय समाज पर पूरी तरह से दिखाई देता है। अट्ठारहवीं सदी में भारत की सामाजिक दशा अत्यधिक शोचनीय थी। धार्मिक क्षेत्र में फैले आडम्बर, अंधविश्वास और पाखण्ड ने समाज की जड़ें खोखली कर दी थी। समाज एक ऐसी अंधेरी-संकीर्ण गलियांे में भटक रहा था, जहाँ विकास और मुक्ति की कोई भी किरण का प्रवेश निषेध था। समाज की ठेकेदारी ब्राह्मणों, पुरोहितों और चंद धनिकों के हाथों में थी और भोली-भाली जनता को धर्म का भय दिखाकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते थे। कुल मिलाकर यह समय इतिहास का वह कालखण्ड है जब देश और समाज धर्म, सम्प्रदाय और जाति के आधार पर पूरी तरह विखण्डित था और यही विखण्डित समाज राष्ट्र की प्रगति मेंे बाधक बना हुआ था। सामाजिक गतिविधियों में एक ठहराव सा आ गया था। हिन्दू और मुस्लिम समाज जात-पांत के झगड़ों में उलझ कर आरोप-प्रत्यारोप में ही व्यस्त रहते थे। जाति-पांति और धर्म लोगों में मानवता के ऊपर था। लोगों की धार्मिक विश्वासों में इतनी कट्टर आस्था थी कि वे एक-दूसरे की जान लेने में भी नहीं हिचकते थे। जीवन में अपने धर्म को सर्वोपरि मानते हुये, दूसरे धर्मों का अनादर करना और उन्हें नीचा दिखाने की होड़ सी लगी रहती थी। संकीर्ण मानसिकता ने समाज को नर्क बना रखा था। हिन्दू धर्म में भी जाति के आधार पर ऊँच नीच का भेदभाव बहुत अधिक था। छुआछूत समाज में कोढ़ की तरह व्याप्त थी। सवर्ण और ब्राह्मण वर्ग स्वयं को कुलीन समझता था और निम्न जाति के लोगों पर अत्याचार करता था। दूसरी ओर मुस्लिम समाज शिया और सुन्नी सम्प्रदायों में बँटा हुआ था और दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहते थे। हिन्दुआंे में भी वैष्णव, शैव, शाक्य मतावलम्बी अपने छोटे-छोटे सम्प्रदायों में बँटे हुये थे। वे अलग-अलग ईश्वर की आराधना करके अपने ईश्वर को श्रेष्ठ और दूसरों को हेय समझते थे। फलस्वरूप

 Copyright © 2020 Authors

अलगाव और टकराव की स्थिति सदैव ही बनी रहती थी। इस प्रकार समाज मेंे व्याप्त बुराईयों में धार्मिक संकीर्णता का बोलबाला था। अंधविश्वासों की जड़ें इतनी गहरी थी कि जन्म से लेकर मृत्यु तक के कर्मकाण्ड, ब्राह्मणों, पुरोहितों और मौलवियों की आय का साधन थे और भोली भाली जनता की गरीबी का मुख्य कारण। ये पाखण्ड न सिर्फ हिन्दू धर्म में बल्कि मुस्लिम धर्मावलम्बियों में भी समान रूप से व्याप्त थे। ये समाज में ऊँच-नीच हेय और श्रेष्ठ, अमीर-गरीब जैसी खाईयों को भी बढ़ा रहे थे। जो व्यक्ति आडम्बरों और दिखावे पर जितना खर्च करता थ उसे समाज में उतने ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इस प्रकार समाज में बिखराव की स्थिति विद्यमान थी।

धार्मिक पाखण्डों और सामाजिक नियमों के आधार पर भोली-भाली जनता का आर्थिक और दैहिक शोषण किया जा रहा था। सामाजिक कुरीतियों ने दलित वर्ग को शोषण और अत्याचार की ज्वाला में झोंक दिया था। स्त्री-वर्ग शोषण और अत्याचार का शिकार था। यद्यपि प्राचीनकाल में नारी को एक सम्मानजनक स्थान प्राप्त था किन्तु सत्रहवीं-अट्ठारहवीं शताब्दी के आते-आते नारी की दशा शोचनीय हो गयी थी। वह पुरुष वर्ग की दया पर निर्भर थी। समाज में उसकी स्थिति दोयम दर्जे की थी। बाल विवाह, बहु विवाह, कन्या-जन्म पर शोक, सती प्रथा आदि कुप्रथाओं ने उनके शोषण को और बढ़ावा दिया था।

हालाँकि ग्रामीण जनता खेती-बाड़ी करके आत्म-निर्भर थी तथापि शोषण का शिकार थी। खेती के पुराने और पारम्परिक तरीके उत्पादन को प्रभावित करते थे तो दूसरी ओर लगान और कर की वसूली के रूप में उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा जमींदारों और अंग्रेज सरकार को चला जाता था। बचे-खुचे में एक परिवार का पेट पालना ही गरीब कृषक के लिये कठिन हो जाता था। जिस पर धार्मिक पाखण्ड और सामाजिक रस्मों और परम्पराओं पर खर्च करना उसकी विवशता थी। फलस्वरूप वह ऋण लेकर भी इन आडम्बरों और परम्पराओं का निर्वाह करता था। यहाँ तक कि कई बार तो वह अपनी जमीन बंधक रखकर भी सामाजिक परम्पराओं का निर्वाह करता था।

बंधुआ मजदूरों की दशा भी अत्यंत शोचनीय थी, उनसे पशुवत् व्यवहार किया जाता था। उन्हें दासों जैसा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों की घोर उपेक्षा ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया और लोग भूखों मरने के डर से कम्पनी और जमींदारों की गुलामी करने पर मजबूर हो गये थे। इस प्रकार मजदूरों और किसानों का शोषण अनेक प्रकार से होता था। कृषक पैदावार जब बेचने जाते थे तो उनकी आय का अधिकांश हिस्सा दलालों और बिचैलियों के द्वारा हड़प लिया जाता था। कम्पनी के अधिकारी किसानों को संरक्षण न देकर जमींदारों के साथ शोषण में हिस्सेदार बने रहते थे।

छोटे-छोटे गृह उद्योग भी अंग्रेजों की नीतियों के कारण पनप नहीं पा रहे थे और समृद्ध व्यापारी लघु व्यापारियों का शोषण उसी प्रकार करते थे, जिस प्रकार बड़ी मछली, छोटी मछलियों को खा जाती है। नमक जैसी अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति में भी दलाली खाई जा रही थी। एक ओर तो स्वार्थी व्यापारी वर्ग घटिया और गन्दा अखाद्य नमक बेचकर मुनाफा कमा रहे थे और दूसरी ओर कम्पनी नमक की तस्करी को प्रोत्साहन देने में लगी थी। यह शोषण की नीति भी लोगों को दयनीय दशा में पहुँचा रही थी। इस प्रकार अंग्रेजों की शोषण की नीति का विरोध भी कमजोर वर्ग नहीं कर पा रहे थे जबकि अमीर वर्ग उनके सहयोग से मुनाफा कमा रहा था। समाज में शोषण और अत्याचार का राक्षस मुँह उठाये खड़ा था और निरीह उसका निवाला बन रही थी।

समाज मेंे जो कुरीतियाँ व्याप्त थी उनमें स्वार्थ और विलासिता की भूमिका प्रमुख थी। अल्पायु में ही संतानों का विवाह कर दिया जाता था। अबोध बालक विवाह जैसे पवित्र संस्कार का महत्व तो क्या अर्थ भी नहीं समझते थे। बाल विवाह मात्र गुड्डे-गुड्डियों का खेल सा हो गया था। 6-7 वर्ष की कन्या और 8-9 वर्ष के पुत्र का विवाह आम बात थी। इस प्रथा के कारण बाल विधवाओं की संख्या भी समाज में बढ़ती जा रही थी। विधवाओं की स्थिति बड़ी ही दयनीय होती थी। समाज उन्हें नासूर समझता था। उन्हें न तो रंगीन वस्त्र पहनने की आजादी थी, न ही अच्छा भोजन करने की। मध्ययुगीन अंधकार ने इस प्रथा को और अधिक विकृत बना दिया था।

 Copyright © 2020 Authors

कुलीन वर्ग में बहुविवाह को मान्यता प्राप्त थी। कुलीन व्यक्ति एक से अधिक पत्नियाँ रखना अपनी शान समझते थे। पत्नियों को सम्मानपूर्ण स्थान दिया जाता था किन्तु घर-परिवार में उनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी भोग्या की होती है। उन्हें अपने पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था साथ ही उन्हें अपना निर्णय या मशविरा देने की भी आजादी नहीं थी। उन्हें केवल खाना कपड़ा और ऐशो आराम की जिन्दगी मिलती थी और अधिक की वह इच्छा भी नहीं रखती थी। इस प्रकार बहुविवाह जैसी घृणित परम्परा भी समाज में मान्यता प्राप्त कर चुकी थी। महिलाओं की खरीद-फरोख्त और वेश्यावृत्ति का धंधा भी इन्हीं परम्पराओं के तले पनप रहा था।

एक और सामाजिक कुरीति के रूप में दहेज प्रथा विद्यमान थी वो थी-विवाह के बाजार में खुले आम दहेज की माँग करना। इसीलिये जिन लोगों का समाज में वर्चस्व था अन्य साधारण वर्ग की तुलना में वे कई-कई कन्याओं से विवाह कर लेते थे। कई बार तो एक व्यक्ति अपनी विवाहित पत्नियों की संख्या भी ठीक तरह से नहीं बता पाता था। सनाढ्य ब्राह्मण वर्ग मंे बहु-विवाह बहुत अधिक किये जाते थे। इसमें से कई लड़कियाँ तो विवाह के बाद भी अपने माता-पिता के घर में रहती थी। इस प्रकार वे सामाजिक बन्धनों में बँधकर गुलामों की तरह जीवन-यापन कर रही थी।

कहीं-कहीं नारी को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था इसीलिये कुलीन वर्गों में अपने थोथेे मान-सम्मान की रक्षा के लिये कन्या वध की घृणित और पैशाचिक परम्परा थी। कन्या को अपने सम्मान पर आघात मानकर उसकी हत्या कर दी जाती थी।

विधवा की स्थिति समाज में अभिशप्त सी थी और धर्म की आड़ लेकर निरपराध विधवा स्त्री को बड़ी नृशंसता के साथ अपने पति की चिता से बाँधकर जिन्दा जला डालने की या समाधिस्थ करने की क्रूर परम्परा को शास्त्रों की दुहाई देकर लागू किया गया था। हालांॅकि इस प्रथा के पक्ष-विपक्ष में लम्बे तर्क-वितर्क होते रहे किन्तु शास्त्र के अनुसार इसे प्राचीनकाल से नारी को पापमुक्त करने के लिये और सम्मानित करने की दुहाई देकर ऐसी बर्बर प्रथा को जीवित रखा गया था। मध्ययुग में तो इस प्रथा ने और अधिक वीभत्स रूप धारण कर लिया था। पति की मृत्यु के दारूण दुख से पत्नी को मुक्त रखने के लिये ही यह प्रथा चलाई जा रही थी ऐसी कुत्सित सामाजिक और धार्मिक मान्यताएँ सभ्य और शिक्षित समाज के समक्ष चुनौती थी। इस प्रथा की ओर सर्वप्रथम ईसाई मिशनरियों का ध्यान गया और उन्होंने इसे नारी-हत्या कहकर इस नृशंसता पर सवाल उठाया। अलेक्जेण्डर डो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द हिस्ट्री आॅफ हिन्दुस्तान वाॅल्यूम-3' में लिखा कि बंगाल क्षेत्र में सभी धर्मों को मान्यता दी जा सकती है सिवाय कुछ एक बर्बर प्रथाओं के। हमें युवा विधवा स्त्रियों को अपने मृत पति की चिता पर जलाने और बूढ़े और बीमार व्यक्तियों को जल समाधि देने जैसी प्रथाओं पर रोक लगानी होगी। विलियम कैरी ने भी सन् 1802 में लिखा था कि चाहे जो भी धार्मिक उद्देश्य रहा हो, हमें विधवा स्त्रियों को मृत पति के साथ जलाने और शिशु वध जैसी प्रथाओं को बंद करना चाहिये, क्योंकि ये सभी शासन के विरूद्ध अपराध है। इस सिलसिले में शिशु वध को रोकने के उद्देश्य से अगस्त 1802 में लाॅर्ड वैलेजली ने यह घोषणा कर दी कि सागर द्वीप में जो भी शिशु को जल समाधि देगा, उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा। उसके इस आदेश का कोई विरोध नहीं हुआ।

सभ्य शिक्षित और सुसंस्कारी समाज में एक कोढ़ के रूप में उभरी हुई यह प्रथा लोगों के लिये स्वार्थ सिद्धि और झूठी प्रतिष्ठा का सबब बन गई। सामाजिक पतन, धार्मिक प्रतिष्ठा व रीति रिवाज और परम्पराओं का आवरण ओढ़कर किसी भी अवधारणा का पालन करने के लिये लोगों को या समाज को अभिप्रेरित किया जा सकता है। वैसे भी वह स्त्री जो सती होने जा रही है, सामाजिक रूप से कमजोर और असुरक्षित है। क्योंकि उसका पति, उसका सहारा उससे छिन चुका है। भविष्य में सुरक्षा और भरण-पोषण की समस्या उसके लिये प्रश्न चिन्ह बन जाती थी और उसकी इसी कमजोरी का फायदा उठाकर समाज के ठेकेदार उसे धार्मिक और सामाजिक परम्परा का वास्ता देकर, धार्मिक प्रतिष्ठा और देवी के समान सम्मान का लालच देकर सती होने के लिये बाध्य कर देते थे। वह अशक्त नारी यह सोचकर कि जीवित रहते हुये तो दुख ही झेलने पड़ेंगे, पेट भरने, तन ढंकने और लाज बचाने जैसे प्रश्न नाग की भाँति फन फैलाये उसके सामने खड़े रहेंगे। कदम-कदम पर अपमान का विष उसे पीना पड़ेगा। तब शायद इन दुःखों से घबरा कर वह

 Copyright © 2020 Authors

आत्महत्या करने पर विवश हो जाये, तो क्यों न पति की चिता पर सती होकर वह समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर देवी की तरह पूज्या बने? यहाँ तक कि पुरुष वर्ग भी सती स्त्री का सम्मान करते हैं और उसके दिव्य रूप की पूजा करते हैं। बस यहीं पर वह अपनी तर्कशक्ति को खोकर असहाय और विवश होकर यह निर्णय लेती रही। समाज इसी प्रकार की परम्पराओं के बोझ तले दबता गया और नारी के मौन को स्वीकृति समझकर उसे सती करके महिमा मंडित करता रहा। इस प्रकार यह प्रथा समाज और राष्ट्र का कलंक बनती चली गयी।

ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रवेश से बंगाल में भीषण शोषण का बोलबाला था। स्थायी बन्दोबस्त ने किसानों को जमींदारों की दया पर छोड़ दिया। हिन्दू और मुस्लिम किसान गरीबी का शिकार होने लगे। इस प्रकार किसानों और जमींदारों के सम्बन्धों में कटुता आने लगी। धनी जमींदारों की संतानें शिक्षा प्राप्त करती। सुखमय जीवन व्यतीत करती और गरीब किसान दो वक्त की रोटी की तलाश में भटकता रहता। कुछ जमींदार व्यापार के क्षेत्र में प्रवेश कके खूब मुनाफा कमाने लगे और किसानों का शोषण बढ़ता गया, वे कर्ज के बोझ तले दबते चले गये। खेत, भूमि और मकान के साथ-साथ मवेशी भी उनसे छीन लिये जाते थे। किसान जमींदारों के अत्याचारों से दुखी होकर नगरों में मेहनत मजदूरी करने लगे। जमींदारी प्रथा से जहाँ एक ओर आम खेतीहर जनता दुखी और पीड़ित थी, वहीं दूसरी ओर विदेशियों द्वारा देश की सम्पत्ति लूटकर विदेशों को ले जाई जा रही थी और देश बदहाली के दौर से गुजर रहा था तथा ये कुप्रथाएँ समाज में फैलकर उसे पतन के गर्त मेंे ढकेलती जा रही थी। ऐसी बर्बर प्रथाएँ किसी भी सभ्य समाज के माथे पर एक कलंक के समान थी।

सामाजिक सुधार-

सन् 1828 मंे ब्रह्म समाज की स्थापना करके राममोहन ने सामाजिक सुधारों के लिये पूरे मनोयोग से प्रयास आरम्भ कर दिये। ब्रह्म सभा न सिर्फ धार्मिक सुधारों का समर्थन कर रही थी, बल्कि समाज में फैली कुरीतियों के विरूद्ध भी आवाज उठाने लगी। यहाँ तक कि महिला उद्धार की दिशा में भी उनके प्रयास आरंभ हो चुके थे। देश में परिवर्तन की आवश्यकता थी और परिवर्तन का बीड़ा उठाया था राममोहन राय ने। इस कार्य में सहयोगी बने 'आत्मीय सभा' और 'ब्रह्म समाज' के सदस्य। उन्हें घने अंधकार में कार्य आरम्भ करना पड़ा। केवल आशा का एक टिमटिमाता चिराग ही उनके पथ में था। आम जनता का ध्यान आरम्भ में उनकी तरफ नहीं गया, केवल शिक्षित वर्ग ही उनके विचारों से सहमत हो पाते थे।

हिन्दुओं की दुर्दशा का एक कारण जाति व्यवस्था, ऊँच नीच का भेद और छुआछूत भी था। जाति भेद के दुष्परिणामों के बारे में राममोहन राय हमेशा चिंतित रहे और वे सजग होकर इस पर विचार कर रहे थे कि जाति-व्यवस्था हमारी अवनति का एक प्रमुख कारण है। उनके एक व्यक्तिगत पत्र (18 जनवरी 1828) में उन्होंने लिखा था-

-''मुझे कहते हुये दुख होता है कि हिन्दुओं द्वारा अनुसरण किया गया धर्म उनके राजनैतिक हित के लिये उपयोगी नहीं है। जात-पात के भेदभाव और छोटे-छोटे असंख्य श्रेणियों में बंटे होने के कारण वे लोग देशभक्ति की चेतना से पूरी तरह वंचित है। धार्मिक रीति-रिवाजों के आधिक्य और शुद्धिकरण के नियमों के कारण कोई भी कठिन उद्योग हाथ में लेने के अयोग्य हो गये हैं। इसलिये मेरा विचार है कि राजनैतिक सुविधा और सामाजिक सुख-साधन के लिये इनके धर्म में कुछ परिवर्तन लाया जाना चाहिये।''

उनके लेखोंे में भी इस सामाजिक बुराई के खिलाफ आवाज उठाई गई थी। उन्होंने व्यक्तिगत स्तर से लेकर सामाजिक स्तर तक इस भयंकर समस्या की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करवाया। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के संस्पर्श में आने के कारण राममोहन के जाति व्यवस्था या जाति-पाति संबधी विचारों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। इसीलिये उन्होंने 'वज्रसूची' जैसे जात-पात विरोधी संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद करके एवं उसे छपवाकर बंटवाने का बीड़ा उठाया। इसके लेखक मृत्युंजयाचार्य थे। उनके ग्रंथ का मूल वक्तव्य जाति भेद की निन्दा करना ही था। इस ग्रंथ में उन्होंने आदर्श ब्राह्मण के बारे में इस प्रकार उल्लेख किया है-

 Copyright © 2020 Authors

शास्त्रों का कहना है-''जन्म से सभी शूद्र होते हैं, उपनयनादि संस्कार होने पर द्विज कहलाते हैं। वेदाभ्यास से विप्र और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने पर ब्राह्मण कहलाते हैं अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ही ब्राह्मण है।''

जाति-प्रथा भारत के राजनैतिक और सामाजिक पिछड़ेपन का एक कारण आज भी है। इस तथ्य की ओर राममोहन ने ही सबसे पहले ध्यान आकर्षित किया था। उनके कहे हुये वाक्य आज भी एक सीमा तक प्रासंगिक लगते हैं। इसी सन्दर्भ मेंे उनकी एक पुस्तक 'तुहाफात-उल-मुवाहिद्दीन' में उन्होंने लिखा था-''जाति-पाँति और धर्म के भेदभाव को छोड़ सभी मानव हृदय परस्पर प्रेम से जीतना ही परमेश्वर की एकमात्र पूजा है।''

सामाजिक समानता के बारे में राममोहन राय के विचार उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के ट्रस्ट डीड में स्पष्ट झलकते हैं उन्होंने ब्रह्म समाज को सम्पूर्ण मानव समाज के लिये सामुदायिक धर्म सभा का स्वरूप दिया है।''

उनके द्वारा स्थापित मंदिर में जात-पांत या धर्म के आधार कोई भेदभाव या रोक-टोक नहीं थी, कोई भी जो ईश्वर में विश्वास रखते थे उस मंदिर में प्रवेश पा सकते थे। उस युग में यह क्रांतिकारी विचारों का सूत्रपात था।

जैसा कि उस समय की परिस्थितियों से स्पष्ट था हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई जनता भारत में निवास कर रही थी और वे एक-दूसरे को हेय समझकर सदा ही एक दूसरे की आलोचना और तिरस्कार करते रहते थे। राम मोहन इन सबको एकता के सूत्र में बाँधने के लिये प्रयत्नशील थे और इसीलिये उन्होंने एक ही ईश्वर की उपासना पर बल दिया। एकेश्वरवाद की संकल्पना प्रस्तुत की। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी अस्तित्व में आई तो ईसाई मिशनरियाँ धर्म और परोपकार के आवरण में लिपटी, हिन्दुओं और मुस्लिमों को ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिये प्रलोभन देकर, धर्म भीरूता से और अन्य प्रकार से प्रोत्साहित करने लगी। गरीब जनता दो वक्त की रोटी और तन ढंकने को कपड़ा बस इतने के एवज में धर्म परिवर्तन करने को तैयार हो जाती थी। इस बात ने राम मोहन को अंदर तक कष्ट पहुँचाया और वे धर्म परिवर्तन का विरोध करने लगे। वे न हिन्दू धर्म के समर्थक थे न इस्लाम धर्म के और न ही ईसाई धर्म के। वे केवल मानव धर्म को महत्व देते थे और मानवीय व्यवहारों का पक्ष लेते थे। इसी दिशा में प्रयत्न करते थे। लोग उन्हें धर्मद्रोही समझते थे किन्तु इन सुधारों के लिये उन्होंने किसी की परवाह नहीं की और अपने असाधारण प्रयासों में लगे रहे। उन्होंने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया और सभी धर्मों के उदार सिद्धांतों को अपनाया। उनकी सोच बड़ी ही सकारात्मक थी। उनके एकेश्वरवाद की अवधारणा से लोगों में जागृति उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे लोग उनके समर्थन में जुटने लगे।

ब्रह्म समाज नारी मुक्ति के प्रयासों में जी-जान से जुट गया था और प्रबुद्ध, युवा वर्ग की सोच में भी आमूल-चूल परिवर्तन आ चुका था और वे पुरानी और औचित्यहीन परम्पराओं का निर्वाह करने में स्वयं को असमर्थ पाते थे। वे परिवर्तन चाहते थे। इस प्रकार दलितों और विधवाओं के उद्धार में जब ब्रह्म समाज ने कार्य आरम्भ किये तो युवा पीढ़ी भी उनके साथ हो गई।

समाज में बहुविवाह का विरोध आरम्भ हो चुका था। हालाँकि राममोहन की पहली पत्नी का देहावसान होने पर उनके दो विवाह पुनः करा दिये गये थे किन्तु वे इस प्रथा के विरोध में खड़े हो गये थे। एक जमींदार परिवार में परवरिश पाने के बाद भी वे यह बहुत अच्छी तरह जानते थे कि धनिक समाज के लोग एक से अधिक विवाह केवल अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये करते थे और इस बहुविवाह की घृणित परम्परा को समाज भी मान्यता देता है।

इस कुप्रथा के चलते कम आयु की लड़कियाँ को उच्च कुल में ब्याहने के ख्याल से अधेड़ आयु के पुरुषों से उनका बेमेल विवाह करवा दिया जाता था। अबोध बालिकायें कम उम्र में माँ बनकर कई बीमारियों का शिकार हो जाती थी और कई बार तो वे अल्पायु में ही विधवा होकर अपार कष्ट भोगती थी। उनके सामने दो ही विकल्प रहते थे या तो पति की चिता पर सती होना या समाज की घृणित परम्परानुसार वैधव्य का घोर दुख और पग-पग पर अपमान का कड़वा घूँट पीना। परिवार के सदस्य उस बालिका को पति के साथ सती होने के लिये जलती चिता में

 Copyright © 2020 Authors

झोंक देने में संकोच नहीं करते थे। गर्भवती और अबोध शिशु की माँ को भी सती करने के लिये समाज तैयार रहता था।

इस प्रकार नारी जाति पर होने वाले अन्याय और दुराचारों के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई। भारतीय नारी की दयनीय स्थिति पर राम मोहन ने सन् 1811 में 'ब्रीफ रिमाक्र्स रिगार्डिंग मार्डन एनक्रोचमेंट्स आॅफ द एन्शिएंट राइट्स आॅफ द फीमेल' लेख प्रकाशित किया था। इसी लेख के माध्यम से उन्होंने बहुविवाह और घृणितकुलीन प्रथा के विरोध में आवाज उठाई। यह शायद भारतीय इतिहास का पहला आंदोलन था।

बहु विवाह के बारे में उनका विचार था कि सरकारी अनुमति के बिना किसी व्यक्ति को एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करने की इजाजत नहीं होना चाहिये। इस विषय मेंे उन्होंने मनु संहिता और याज्ञवल्क्य संहिता को उद्धृत करके अपने तर्क की पुष्टि की एवं बहुविवाह को हिन्दू शास्त्रों के विरूद्ध बताया क्योंकि शास्त्रों में भी स्पष्टतः दुश्चरित्र बीमार या निःसंतान होने पर ही दूसरे विवाह की अनुमति दी गई है। इसलिये राममोहन का सुझाव था कि मजिस्ट्रेट या सरकारी अफसर को कानूनी अधिकार दिया जाये कि वह आवेदन पत्र के आधार पर केवल प्रमाणित होने पर दूसरे विवाह की अनुमति दे। इस प्रकार नारी जाति को दुर्गति से राहत मिलेगी और आत्महत्या की संख्या में कमी आयेगी।

बाल विवाह की प्रथा स्वस्थ समाज के लिये विष के समान थी। लोग 6-7 वर्ष की अल्पायु में ही अपनी कन्या का विवाह कर देते थे। ब्रह्म समाजियों ने इस कुप्रथा के खिलाफ आंदोलन छेड़ा और इसमें सबसे अधिक सहयोग प्राप्त हुआ उन्हें 'एंग्लो-हिन्दू स्कूल' के युवा छात्रों का। स्वयं राममोहन का विवाह 9 वर्ष की अल्पायु में हुआ था और उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास विवाह के कुछ दिनों के बाद ही हो गया था। कुलीन ब्राह्मणों की प्रचलित कुरीतियों के चलते वे अल्पायु में ही तीन बार विवाह के बंधनों में बंधे, किन्तु होश संभालते ही वे बाल विवाह के कट्टर विरोधी बन गये और अभिजात्य वर्ग में फैली इस सामाजिक बुराई को खत्म करने हेतु संघर्ष करने लगे।

उस समय कन्या वध भी एक अभिशाप की तरह समाज में व्याप्त था। लोग कन्या के जन्म को हेय दृष्टि से देखते थे फलस्वरूप कन्या को जन्म लेते ही मार देने की कुप्रथा भी अंदर ही अंदर पनपती रही। कन्या के पिता को समाज में झुककर रहना पड़ता है, यह बात अभिजात्य वर्ग की सहनशक्ति के परे थी। पुत्र का जन्म गौरव का विषय था और कन्या का जन्म अपमान का सूचक होता था। इसीलिये माता के विरोध के बावजूद पुरुष प्रधान समाज में दुधमुँही बालिकायें जन्म लेते ही काल का ग्रास बन जाती थी। राममोहन राय इस कुरीति के भी सख्त खिलाफ थे। उनके अनुसार जीवन ईश्वर की देन है उसे अस्तित्व में आने का अवसर ईश्वर ने दिया है फिर उसका जीवन या मृत्यु भी उन्हीं की इच्छा पर निर्भर रहना चाहिये, न कि समाज की इच्छा पर। हर जीव जो जन्म लेता है उसे अपना जीवन जीने का पूरा अधिकार है। इस प्रकार पुत्री की हत्या करना एक जघन्य अमानवीय कृत्य है। जिसका विरोध समाज में होना ही चाहिये।

सामाजिक गुलामी का मुख्य कारण शैक्षणिक पिछड़ापन और उपेक्षा था। यही इन सब सामाजिक बुराईयों की जड़ थी इसीलिये राममोहन राय ने महत्वपूर्ण परिवर्तन करने हेतु कार्य प्रारंभ कर दिया। आधुनिक भारत के निर्माण हेतु उन्होंने सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि समाज में अंधविश्वास और रूढ़ियों को यदि समाज से दूर करना है तो महिलाओं का शिक्षित होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि महिलायें ही संस्कारों के साथ-साथ अंधविश्वास व रूढ़ीवादी परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में भेजती है। इसलिये यह परम्परागत रिवाज पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। इस प्रकार 19 वीं सदी के कुछ दशकों में आधुनिक और उदारवादी हिन्दू परिवारों और ईसाई मिशनरियों की सहायता से स्त्री शिक्षा में रूचि प्रदर्शित की गई किन्तु तब तक भी स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में धीमी प्रगति ही दृष्टिगोचर होती रही।

राममोहन राय पाश्चात्य ज्ञान एवं आधुनिक विचारों से प्रभावित थे। इसलिये उन्होंने नारी मुक्ति हेतु कड़े प्रयास किये साथ ही वे स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाते रहे एवं ''आत्मीय सभा'' और ''ब्रह्म समाज'' के

 Copyright © 2020 Authors

माध्यम से सुधारवादी आंदोलन भी चलाते रहे। विधवा पुनरुद्धार से ही नारी को समाज में उच्च दर्जा मिलेगा और कई समस्याओं का एक साथ अंत हो सकेगा। ऐसा उनका मानना था।

इसी प्रकार उन्होंने निम्न स्तर के ब्राह्मणों और कुछ कायस्थों में प्रचलित कुलीन-प्रथा और कन्या विक्रय जैसे प्रचलित कलंकों पर आपत्ति व्यक्त करते हुए आंदोलन किया और साथ ही हिन्दू स्त्री को सम्पत्ति में अधिकार सम्बन्धी प्रश्न पर भी सरकार के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया था। परन्तु रूढ़िवादी लोग अभी भी पुरुषों व महिलाओं के लिये अलग-अलग मापदण्ड रखते थे। उन्हें राममोहन द्वारा स्त्री को शिक्षा प्रदान करने एवं विवाह पूर्व पिता की सम्पत्ति में और विवाहोपरांत पति की सम्पत्ति में अधिकार देने की बात कतई पसंद नहीं आई अतः इस प्रस्ताव पर उनका घोर विरोध हुआ।

इस विरोध प्रदर्शन में राधाकंात देव प्रमुख थे जो कि 'धर्म सभा' का नेतृत्व कर रहे थे। यह 'धर्म-सभा' रूढ़ीवादी ब्राह्मणों का संगठन थी। जिसे उन्होंने राममोहन के ब्रह्म समाज के विरूद्ध स्थापित किया था। राधाकांत देव एक कट्टर हिन्दू थे और राममोहन के प्रबल शत्रु थे। यहाँ तक कि उन्होंने ब्रह्म समाज को जला डालने और राममोहन की हत्या करने की धमकी भी दे डाली थी। जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर धर्म सभा द्वारा ब्रह्म समाज के विरूद्ध जनमत तैयार किया गया और जनसाधारण को नारी की मुक्ति के सन्दर्भ में विचित्र कथायें बताकर उन्हें नारी को बंधन में रखने की शिक्षा दी।

सम्पत्ति में अधिकार देने से सती प्रथा जैसे घृणित कृत्यों पर भी रोक लगाई जा सकती थी क्योंकि विधवा स्त्री के भरण-पोषण की समस्या ही उसके जीवन का अंत करने के लिये परिवार के सदस्यों और स्वयं विधवा को बाध्य करती थी। पति की सम्पत्ति में अधिकार मिलने पर विधवा अपना भरण पोषण सम्मान के साथ कर सकती थी।

विधवाओं के सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये विधवा-विवाह का समर्थन राममोहन राय का सामाजिक सुधार के क्षेत्र में एक स्वागत योग्य कदम था। वे चाहते थे कि कम आयु की विधवा स्त्रियां जो वैधव्य के कलंक को अपनी मृत्यु से धोती हैं, वे पुनः विवाह करके अपने जीवन को नवीन अर्थ दे सकती हैं। ब्रह्म समाज के समर्थकों ने इस प्रस्ताव का स्वागत करते हुये विधवा विवाह की हिमायत की। उनके बाद ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने भी विधवा विवाह का प्रचार किया। इस प्रकार विधवा-विवाह को सामाजिक मान्यता दिलवाने के पक्ष में राममोहन राय ने सार्थक प्रयास आरम्भ किये थे जो कालांतर में महिलाओं की स्थिति में सुधार करने की दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध हुये।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में देश की आर्थिक स्थिति आम जनता की शोषक थी। विदेशी व्यापारियों के अत्याचारों से भारतीय पीड़ित थे। कम्पनी की शर्त जमींदारों के हित में तो थी मगर गरीब वर्ग के लिये गले की फांसी सिद्ध हो रही थी। कंपनी की स्वेच्छाचारिता के विरूद्ध राममोहन ने आवाज उठाई। जाति व धर्म के आधार पर उत्पन्न हुई फूट का फायदा कंपनी के सेवकों ने उठाया और स्वार्थसिद्धि में लग गये। राममोहन स्वयं धनी वर्ग के थे। अतः वे स्थिति का सही विश्लेषण करके यह जान गये थे कि गरीब और अमीर के बीच जो खाई है वहीं गरीब तबके के शोषण का कारण है। उन्होेंने सन् 1832 में संसदीय समिति को बताया कि ''स्थायी बन्दोबस्त से किसानों की स्थिति दयनीय हो गई है। जमींदारों के लालच व अति महत्वाकांक्षा के कारण किसान उनकी कृपा पर निर्भर है। सरकार ने जमींदारों को लगान के मामले में अनेक सुविधाएँ दी, किन्तु किसानों को कोई लाभ नहीं पहुँच पाया।''

जमींदारों के द्वारा किसानों से बहुत अधिक लगान वसूला जाता था। किसानों की आय का अधिकांश भाग लगान के रूप में जमींदार हड़प लेते थे और किसानों के पास पेट भरने लायक अन्न भी नहीं बचता था। सरकार लगान घटाना तो दूर, उल्टे उसमें वृद्धि करने का विचार रखती थी और जमींदारों की लूट में कम्पनी का भी हिस्सा होता था। राममोहन ने लगान में वृद्धि का विरोध किया। वे चाहते थे कि सरकार सीधे ही किसानों से लगान वसूल करें। जबकि कम्पनी के अधिकारी उनसे यह आशा रखते थे कि जमींदार होने के कारण वे जमींदारों का पक्ष लें न कि किसानों का। परन्तु राममोहन स्वार्थ से प्रेरित नहीं थे वे किसानों को न्याय दिलवाने के लिये उनके हक में लड़ाई कर रहे थे। उनके हृदय में किसानों के प्रति गहरी सहानुभूति थी जो दोहरे शोषण का शिकार हो रहे थे। एक और

 Copyright © 2020 Authors

तो जमींदार उन्हें शोषित कर रहे थे तो दूसरी ओर कम्पनी की जमींदारों के साथ सांठ-गांठ से उन्हें बेहद कष्टों का सामना करना पड़ता था।

राममोहन का विचार था कि जमीन पर पहला अधिकार किसान का होता है। जनता इस प्रकार के अधिकारों से सर्वथा अनभिज्ञ थी किन्तु एक प्रगतिशील मस्तिष्क के स्वामी राममोहन राय ने उन्हें इस शोषण से मुक्त करवाने एवं अधिकार दिलवाने हेतु प्रयास किये और आधुनिक सुझाव भी दिये। उनका सुझाव था कि अंग्रेजों के स्थान पर देशी कलेक्टर नियुक्त किये जायें, क्योंकि अंग्रेज अधिकारी ऊँचा वेतन लेते हैं और उनकी विलासिता पर अधिक खर्च होता है। लगान घटाने से हुई आर्थिक क्षति की पूर्ति विलासिता की वस्तुओं पर अतिरिक्त कर लगा कर की जा सकती है। उन्होंने जमींदारों को असीमित अधिकार देने तथा उनके द्वारा किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों का कड़ा विरोध किया। जागरूक लोगों द्वारा उनके सुझावों का स्वागत किया गया एवं उनके साथ-साथ आवाज उठाई गई तो कंपनी सरकार भी उनके द्वारा सुझाये गये व्यावहारिक हल की उपेक्षा न कर सकी।

देश के उद्योग और कृषि सम्बन्धी मामलों में राममोहन राय पूरी तरह जागरूक थे। इसी काल में कम्पनी ने नील काश्तकारों के अधिकार छीनने की कोशिश की। राममोहन ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। जबकि अधिकांश नील काश्तकार अंग्रेज ही थे। 15 दिसम्बर 1829 में स्वतंत्र व्यापार और आयात-निर्यात के लिये कलकत्ता के टाउन हाल में एक सभा बुलाई गई थी। इस सभा में स्वयं राममोहन राय अपने मित्र द्वारका नाथ ठाकुर के साथ उपस्थित हुये थे। यहाँ चीन के साथ खुले व्यापार की छूट और यूरोपीय लोगों के भारत में बसने की छूट की माँग उठाई गई थी। राममोहन राय राय ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनके विचार से यूरोपीय सज्जनों के संसर्ग में आने से हम लोगों के साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में अधिक से अधिक उन्नति होगी।

राममोहन और उनके उदार और प्रगतिवादी विचारधारा के मित्रों का वर्ग जिनमें द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्न कुमार ठाकुर आदि थे, वे स्वतंत्र उन्मुख व्यापार के पक्ष में थे और यूरोपीय पूँजी निवेश और बुद्धि विवेक को आयात करने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि इस आदान-प्रदान से एक बुर्जुआ वर्ग (बुद्धिजीवी वर्ग) का उदय होगा, जो राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय भाग ले सकेगा। द्वारकानाथ ठाकुर ने इस विषय में सभा के सामने पक्ष रखते हुए कहा-''नील की खेती और यूरोपीय लोगों के बस जाने से देश और देश के सभी श्रेणियों के लोगों को भारी लाभ पहुँचा है। जमींदार धनी बने है, देश ने तरक्की की है और साथ ही किसानों की हालत भी सुधरी है। जिन इलाकों में कारखाने नहीं है, नील की खेती नहीं है, उन इलाकों की अपेक्षा इनकी हालत कहीं बेहतर है।''-उनके प्रस्ताव का समर्थन राजा राममोहन राय द्वारा किया गया और उन्होंने कहा कि पूरी तरह विचार करने पर कहा जा सकता है कि सरकारी और गैर सरकारी दूसरे यूरोपवासियोेंं की अपेक्षा इन नीलकारों ने इस देश की जनता का अधिक उपकार किया है।

इधर ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा नमक पर एकाधिकार करने की नीयत से विदेशी नमक पर चुंगी बढ़ा दी। जिससे कम्पनी का एकाधिकार नमक पर बना रहा और नमक के दाम दुगने हो गये। कम्पनी ने नमक की कृत्रिम कमी पैदा करने के लिये गोदामों में नमक छिपा दिया। इस प्रकार नमक की तस्करी को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिला और घटिया तथा मिलावटी नमक बेचकर स्वार्थी व्यापारी मुनाफाखोरी करने लगे। इस स्थिति से ब्रिटिश नागरिक भी क्षुब्ध हो गये। जे. क्रोफोर्ड और राॅबर्ट रिचर्ड ने इंग्लैंड में अनेक लेखों और पुस्तिकाओं द्वारा इस नीति का विरोध किया। यहाँ तक कि इंग्लैंड के समाचार पत्रों ने सरकार की निंदा की। कम्पनी की नौकरी कर चुके लोग उनकी नीतियों से पहले से ही नाराज थे। वे इस विरोध आंदोलन में साथ हो गये। स्वयं राम मोहन ने रामहरिदास के छद्मनाम से एक पत्र लिखकर कम्पनी सरकार का ध्यान जनता की समस्याओं और कष्टों की ओर दिलवाया। धीरे-धीरे संसदीय प्रवर समिति के प्रयासों ने भी एकाधिकार का विरोध किया इस प्रकार यह एकाधिकार समाप्त हुआ और संघर्ष में आंदोलनकारी जीत गये। राममोहन सामान्य जनता के हितों का कितना ध्यान रखते थे यह उनके मानवतावादी दृष्टिकोण से स्पष्ट है। वे साथ ही साथ एक कुशल अर्थशास्त्री भी थे।

 Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-5 No. 19 May 2020

अंग्रेज उपनिवेशों से प्राप्त होने वाले लाभ व हानियों के सम्बन्ध में उन्हांेने कोरी भावुकता से काम न लेकर विवेकपूर्ण निर्णय लिये। उपनिवेशवाद के संभावित खतरोें की कल्पना उन्हें थी। फिर भी वे यह भली-भाँति समझ गये थे कि शिक्षित व उदारवादी अंग्रेजों के भारत में बस जाने से भारतीयों को लाभ ही होगा। उनकी दृष्टि में शिक्षा व संस्कृति के विकास के साथ ही औद्योगिक विकास का होना भी नितांत आवश्यक है। देश को विनाश से बचाने के लिये स्वतंत्र पश्चिमी देशों से सम्पर्क कायम रखना आवश्यक है। वे सांस्कृतिक आदान-प्रदान के भी समर्थक थे।

उनके सहयोगी एवं मित्र द्वारकानाथ ठाकुर विदेशी उद्योगपतियों से सहयोग लेने के पक्षधर थे। जब कुछ प्रगतिशील जमींदारों ने उद्योग के क्षेत्र में प्रवेश किया तो अनेक नये उद्योगों की स्थापना हुई। राममोहन ने उनको इस क्षेत्र में काफी सहयोग दिया। उनके प्रोत्साहन से ग्रामीण क्षेत्रों में भी कई उद्योग स्थापित हुये। ग्रामीण क्षेत्र सामंतवाद के जुए को उतारकर पूँजीवाद में प्रवेश कर रहा था। उस काल में यह एक क्रांतिकारी कदम था।

कम्पनी द्वारा की जा रही लूट और व्यापक शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने वालों में वे प्रथम भारतीय थे। उन्होंने ही सबसे पहले बुद्धिजीवियों व ब्रिटिश शासकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि भारत से विशाल धन-संपदा ब्रिटेन ले जाई जा रही है क्योंकि जब कम्पनी के अधिकारी अवकाश पर जाते थे तो अपने साथ विशाल धनराशि एकत्र करके इंग्लैंड ले जाते थे। जिसका कोई हिसाब नहीं होता था। इस बात को ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक अफसर ने स्वीकार किया कि प्रतिवर्ष 20 लाख पौण्ड की धनराशि एवं साथ ही सार्वजनिक भेंट व उपहार के रूप अगणित धन दौलत ब्रिटेन जा रही है।''

इस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार के विस्तार के साथ ही शोषण का ऐसा जाल फैलाया कि सारा देश ही अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली होकर रह गया। उनका भारत आने का उद्देश्य पूर्णतः व्यापारिक था किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाकर वे यहाँ शासन करने की योजना बना बैठे और कालांतर में इसमें सफल भी हुये। उनकी शोषण की नीति को भांप कर ही तुर्की के कमालपाशा ने अंग्रेजों द्वारा तुर्की में एक नहर खोदने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।

सती प्रथा-

समाज में ''सती प्रथा'' एक वीभत्स रूप में विद्यमान थी। सारा उत्तर भारत इस प्रथा की चपेट में था और इस कुत्सित प्रथा को धार्मिकता का जामा पहनाकर, समाज में सम्मानजनक कृत्य के रूप में स्थापित किया गया था। नैतिक मूल्यों का ह्रास इस मध्यकाल की घोर विडम्बना कही जा सकती है। जबकि समाज घोर आडम्बर एवं धर्मगत कुरीतियों के भ्रम जाल में उलझ गया था। सत्रहवीं सदी का अंत एवं अट्ठारहवीं सदी के आरम्भ में स्त्रियों की दशा अत्यंत शोचनीय हो गयी थी। पति की मृत्यु होने पर न तो परिवार और न ही समाज में उसे सम्मान मिलता था। विधवा स्त्री तिरस्कार, लांछना और अपमान के साथ ही साथ शोषण का भी शिकार होती थी। उसे एकांत में समाज से काटकर फेंके गये हिस्से के रूप में जीवन यापन करने पर विवश किया जाता था और विधवा स्त्री को तपस्विनी के समान जीवन जीने हेतु बाध्य किया जाता था। इन कुप्रथाओं के चलते विधवाओं को नारकीय यातनायें भोगनी पड़ती थी। उन्हें अपने ही घर परिवार के और समाज के पुरुषों के द्वारा भी छला जाता था किन्तु पुनर्विवाह की अनुमति समाज नहीं देता था। इन्हीं परिस्थितियों ने एक और कुप्रथा को जन्म दिया जो थी 'सहमरण' अर्थात् पति की चिता के साथ 'सती' हो जाने की प्रथा। आजीवन घुट-घुट कर मरने और शोषण का शिकार होने से एक बार पति की चिता में जलकर, मरणोपरांत महिमामंडित होना ही श्रेयस्कर मानकर विधवा स्त्री मृत्यु का वरण कर लेती थी। समाज भी सती होने वाली स्त्री का मन्दिर बनवाकर देवी की तरह उसे पूजने लगता था।

इस प्रकार पति की मृत्यु के बाद उसकी चिता पर सती होने वाली पतिव्रता स्त्री का समाज में बड़ा आदर था। इस प्राचीन प्रथा के पक्ष में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित थी जिनमें अपने मृत पति की चिता में जलकर मरने वाली स्त्री परलोक गमन करती है। अपने शरीर पर विद्यमान साढ़े तीन करोड़ों रोंओ के समान उतने करोड़ों वर्ष तक स्वर्ग में वास करती है। वह अपने मातृ वंश, पितृ वंश एवं पति के वंश को पवित्र करती है। इस प्रकार उस स्त्री की प्रशंसा

 Copyright © 2020 Authors

में गीत गाये जाते थे। अतः सती प्रथा वास्तव में पतन के गर्त में समाये हुये समाज का वो अवशेष थी जिसमें नारी को दोयम दर्जे की स्थिति प्राप्त थी।

राममोहन राय इस घृणित प्रथा को अपने बाल्यकाल से ही देखते आ रहे थे और इस प्रथा की क्रूरता ने उनके मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी थीं जब उन्होंने अपने बड़े भाई जगमोहन की विधवा पत्नी अर्थात् अपनी भाभी आलोक मंजरी को सती होते देखा तो उनका हृदय चीत्कार कर उठा और वे कृत संकल्प हो उठे कि वे इस घृणित प्रथा को बन्द करके ही दम लेंगे। वे इस अन्याय को दूर करने के प्रयासोंे में जुट गये ''आत्मीय सभा'' की बैठकों में भी इस कुप्रथा पर बहस होती रही। राममोहन राय जब भी किसी स्त्री के सती होने की खबर सुनते वे तुरंत ही श्मशान भूमि पर चले जाते एवं उस स्त्री को एवं उसके परिजनों को समझाते और उन्हें रोकने का प्रयास भी करते थे। उनका कहना था कि पुरुष और नारी को समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त है फिर नारी पर ही ये अत्याचार क्यों होते है। कभी भी पत्नी की मृत्यु होने पर कोई पति अपनी पत्नी की चिता में जीवित नहीं जलता, तो फिर स्त्री के लिये ही ये सामाजिक बंधन क्यों है? उन्होंने इस प्रथा को चुनौती देकर अपने लिये अनेक शत्रु खड़े कर लिये थे। करोड़ों के विरूद्ध वे अकेले ही डट गये। उनके इस साहस, दृढ़ता और परिश्रम को देखकर यूरोपवासी, ईसाई मिशनरीज एवं कम्पनी के अधिकारी सभी हतप्रभ रह गये। समाज का रूढ़ीवादी वर्ग उनका कट्टर विरोधी बन गया और उन्हें ''नास्तिक'' और ''धर्मच्युत'' कहकर उन्हें दुत्कारा जाने लगा। परन्तु उनके प्रयासों में कोई शिथिलता नहीं आई। सन् 1818 में उनके प्रयासों ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया।

यद्यपि ब्रिटिश शासकों को अपने व्यापार में अधिक रूचि थी इसलिये वे कोई जनविरोधी कार्यों में पड़ना नहीं चाहते थे। फिर भी इस बर्बर प्रथा के विरूद्ध वे भी थे और इसका उन्मूलन चाहते थे किन्तु हिन्दू समाज को खास कर ब्राह्मण पुरोहित वर्ग को वे रुष्ट नहीं करना चाहते थे। उनके इस रूख से पुरोहित वर्ग खुश था, क्योंकि उन्हें शोषण करने से कोई नहीं रोक पा रहा था। अशिक्षित, असहाय और शोक संतप्त विधवा भला ब्राह्मणों का विरोध कैसे कर सकती थी। कुछ विधवाएँ तो अपमानित होकर जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा, जीवित ही अग्नि को समर्पित हो जाना श्रेष्ठ समझती थी। मैक्स मुलर के अनुसार ''यह इस बात का उदाहरण है कि एक स्वार्थी पुरोहित वर्ग किस सीमा तक जा सकता है।'' इस प्रथा को सामाजिक मान्यता इसीलिये दी गयी कि परिवार या मुखिया भी विधवा के बोझ से छुटकारा पाना चाहता था।

राममोहन राय स्वयं एक कुलीन ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर कुलीन प्रथाओं का विरोध कर रहे थे यह बात अपने आप में आश्चर्यजनक थी। उनका समाज सुधारक बन जाना और धर्म भीरू जनता में चेतना जागृत करना और जनमत को कुरीतियों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देना वास्तव में एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी कदम था। उन्होंने मानवता की भावना से ओतप्रोत होकर ही यह कदम उठाया था। उनके बार-बार अपील करने पर जनमत धीरे-धीरे उनके पक्ष में हो रहा था। ब्रिटिश सरकार पर भी इस प्रथा के उन्मूलन के लिये कठोर कानून बनाने हेतु दबाव बढ़ता जा रहा था। सरकार कोई कानून न बना दे इस भय से कट्टरपंथी हिन्दुओ ने एकजुट होकर अपील भेजी कि-''यह प्रथा धर्म-सम्मत है और शास्त्रों में भी पति की मृत्यु हो जाने पर विधवा स्त्रियों के लिये अग्नि प्रवेश के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है।'' इस घटना से राममोहन और उनके सहयोगियों ने इस प्रथा के विरूद्ध जोरदार आंदोलन आरंभ कर दिया। राममोहन ने धर्मशास्त्रों की नीति संगत व्याख्या करके सही रूप में भारतवासियों एवं विदेशियों के समक्ष तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने सरकार के पास इस प्रथा के विरूद्ध केवल आवेदन पत्र ही नहीं भेजे, बल्कि लेखों, पुस्तकों और समाचार पत्रों के माध्यम से जनचेतना भी उत्पन्न करते रहे। उन्होंने अंग्रेजी और बंगला भाषा में पुस्तिकायें लिखकर प्रकाशित करवाई और मुफ्त ही लोगों में बँटवाई। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं मेंे लेखों और समाचारों के द्वारा तथा स्वयं ही श्मशान भूमि में अपने साथियों को ले जाकर एवं सरकार की सहायता करके इस प्रथा के विरूद्ध संघर्ष करते रहे। उनके इन कार्यों से प्रभावित होकर 'कलकत्ता जर्नल' एवं 'कलकत्ता गजट' ने भी उनकी प्रशंसा की और लिखा कि-''हमें इस बात पर बहुत संतोष है कि सती प्रथा को समाप्त करने के सम्बन्ध में अनेक योजनायें प्रस्तुत की गई हैं और सरकार का ध्यान इन योजनाओं की ओर आकर्षित किया गया है। इस मानवीय प्रश्न को लेकर एक

 Copyright © 2020 Authors

प्रख्यात भारतीय समाज सुधारक ने अपने देशवासियों का नेतृत्व किया है। हमारी सभ्य सरकार ने उन्हें लिखित रूप में ज्ञापन सौंपने के लिये कहा। गवर्नर जनरल ने भी उन्हें समय दिया कि मुलाकात करके उनकी बातों को भली-भाँति समझने का मौका मिल सके। उनकी बातें सुनकर गवर्नर जनरल ने भारतीय जनता के माथे के इस कलंक को मिटाने की इच्छा प्रकट की और यह महसूस किया कि यह न केवल भारतीय जनता के माथे पर वरन् इसको सहन करने वाली तथा इसकी अनुमति देने वाली अंग्रेज सरकार के माथे पर भी कलंक है।''

गजट ने सरकार से अनुरोध किया कि वह उस भारतीय समाज-सुधारक के प्रयासों को व्यर्थ न जाने दें और यथाशीघ्र भारत की जनता और ब्रिटिश सरकार के माथे से इस कलंक को मिटा दें और सदा के लिये इस पैशाचिक कृत्य को समाप्त कर दें।

अब ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्मुख भी कोई चारा नहीं था, फिर भी वे अपने उत्तरदायित्व से बचने के लिये उदासीनता बरत रही थी। जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि कम्पनी इस प्रथा को समाप्त करने की अपेक्षा धर्मान्ध एवं रूढ़ीवादी तत्वों से सांठ-गांठ कर रही है। केवल दिखावे के लिये इसकी निंदा कर रही है। किन्तु इसको समाप्त करने के लिये कोई सक्रिय व सफल कदम नहीं उठा रही है। राममोहन राय के मित्र हरिहरानंद स्वामी का 27 मार्च 1818 के इंडियन गजट में लेख छपा जिसमें ये तथ्य उद्धृत हुये ''यह बात अब पूरी तरह नजरअंदाज कर दी गयी है और विधवाओं को जीवित जलाने के प्रयास अब भी जारी है जो कि अवैध और मानव-वध घोषित किये जा चुके हैं। मुझे बड़ा खेद हो रहा है कि सभ्य समाज के वे गणमान्य नागरिक भी इस नारी हत्या के दोषी हैं जो इस अनाचार के खिलाफ आवाज नहीं उठा रहे हैं और अपने आप को इस अन्याय से लड़ने में असमर्थ पा रहे हैं या लज्जित अनुभव कर रहे हैं। मुझे इस बात पर भी बड़ा आश्चर्य है और खेद है कि यूरोप के सभ्य लोग जो अपने मानवता और नैतिकता को अपना धर्म समझते हैं। वे भी उन लोगों के साथ नारी हत्या के दोषी हैं विनम्रता और सहृदयता से पेश आते है। जैसे वे इतना बड़ा कुकृत्य करके भी सम्मान के योग्य हैं। मैं उन पंडितों और बाबुओं से भी पूछता हूँ कि उनके अपराध कैसे क्षमा योग्य है, जो कि धर्म शास्त्रों की आड़ में नारी हत्या का प्रयास कर रहे हैं? अपने व्यवहार के लिये सरकार अधिकारियों से सुरक्षा प्राप्त किये हुए हैं।''

इस प्रकार सती प्रथा के विरोध में आंदोलन जोर पकड़ता गया और उन विधवाओं की संख्या में कमी आने लगी जिन्हें उनकी इच्छा के विरूद्ध बलपूर्वक सती किया जाता था। 'संवाद कौमुदी' पत्रिका ने इस प्रथा को समाप्त करने में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। जबकि 'समाचार चन्द्रिका' विरोधी पक्ष (धर्म सभा) अर्थात् रूढ़ीवादी हिन्दुओं की पत्रिका इस प्रथा की समर्थक थी।

राममोहन के समर्थकों से अधिक विरोधी थे जो न सिर्फ उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को चोट पहुँचा रहे थे, वरन् उनकी जान के भी दुश्मन बन चुके थे। उनके अत्याचारों की परवाह न करते हुये, वे जनता को इस प्रथा के विरूद्ध जागृत करने में लगे रहे। इस बारे में पादरी मार्शमैन ने बिशप हैंबर को सन् 1824 में एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने राममोहन के प्रयासों से सती प्रथा उन्मूलन के बारे में चर्चा की और कहा कि अब भी कुछ लोग इस प्रथा को धर्म सम्मत समझ रहे हैं जबकि अधिकांश जनता जिसमें कि धनी एवं प्रतिष्ठित लोग भी हैं, वे उनसे सहमत होकर नारकीय प्रथा का विरोध कर रहे हैं।

राममोहन की सती प्रथा पर पहली पुस्तक सन् 1818 में बंगला में और फिर अंग्रेजी में प्रकाशित हुई। जिसका भारी स्वागत हुआ। 24 दिसम्बर, 1818 के कैलकटा गजट ने भी इस पुस्तिका की सराहना की। इसमें छपे एक लेख में यह निष्कर्ष स्पष्ट शब्दों में था कि शास्त्रों में कहीं भी विधवा स्त्री को मृत पति के साथ जलाने की शास्त्र-सम्मत व्याख्या नहीं है। इस प्रकार का कार्य धर्म-सम्मत न होकर स्त्री-हत्या ही कहा जायेगा। राममोहन के इस ग्रंथ ने हिन्दू समाज में हड़कम्प मचा दिया और पंडित और पुरोहितों ने शास्त्रार्थ आरंभ कर दिया। राममोहन ने अपने तर्कों के द्वारा यह प्रमाणित किया कि शास्त्रों और स्मृति ग्रन्थों में भी सती प्रथा के पक्ष में कोई शास्त्रीय या धार्मिक अनुमोदन नहीं है। वैदिक शास्त्रों ने भी इस बर्बर प्रथा की स्वीकृति कहीं भी नहीं दी है।

 Copyright © 2020 Authors

सती प्रथा के समर्थन में जो थोड़े बहुत सन्दर्भ मिलते हैं, वे मध्य युग में हठात् धार्मिक ग्रंथों में जोड़े गये थे और इस प्रकार की शास्त्रीय जालसाजी उस युग में वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की जाती थी। मंत्रों के अशुद्ध पाठ एवं त्रुटिपूर्ण व्याख्या को मोहरा बनाकर धर्मशास्त्री कट्टरता का परिचय देते रहे। सती प्रथा के समर्थक इस अशुद्ध मंत्र को मोहरा बनाकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहे। राममोहन ने अपनी पुस्तिका में इस मंत्र की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया और एच.एच. विल्सन ने पुस्तक के प्रकाशन के 26 वर्षों के बाद इस मंत्र का शुद्ध पाठ खोज निकाला था।

सती प्रथा के पीछे कोई शास्त्रीय या धार्मिक अनुमोदन नहीं है और जो थोड़े बहुत सन्दर्भ मिलते हैं उनको राममोहन राय ने शास्त्रीय जालसाजी प्रमाणित कर दिया क्योंकि वैदिक धर्मशास्त्रांे में स्त्री-हत्या की स्वीकृति नहीं है। राममोहन राय ने कहा था कि यह वचन जाली है क्योंकि विज्ञानेश्वर ने अपनी 'मिताक्षरा टीका' में कहीं भी सती प्रथा के समर्थन में किसी भी श्लोक का विवरण नहीं दिया है। दूसरे टीकाकार रघुनंदन ने भी अपने ग्रन्थ में इसके बारे में कोई वर्णन नहीं किया है। राममोहन जानते थे कि उनके विरोधी खेमे में अपनी बात को पुष्ट करने और राममोहन के विरोध को समाप्त करने की दृष्टि से बड़ी कुशलता से ऋग्वेद के एक मंत्र को बदलकर सती प्रथा के पक्ष में प्रस्तुत किया गया था, जो इस प्रकार है-

''इमा नारिर विधवा सुपत्नी रांजनेन सर्पित संविशन्तु।

अनश्चरोहन मोवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे।''

इस श्लोक के अन्तिम शब्द 'जनयो योनिमग्रे' के स्थान पर 'जनयो योनिमग्रे' कर दिया गया है। जिससे मंत्र का अर्थ ही बदल गया।

सती प्रथा के समर्थकों के लिये यह अशुद्ध मंत्र ही सबसे बड़ा मोहरा था जबकि राममोहन राय के अनुसार इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध थी।

वस्तुतः राममोहन की पुस्तकों के प्रकाशन के बाद एच.एच.विल्सन ने इस मंत्र का शुद्ध रूप खोज निकाला था। राममोहन राय ने बड़ी पैनी दृष्टि से शास्त्रों का अध्ययन करके बारीकी से तथ्यों का अवलोकन किया था। उन्होंने भारतीय नारी की दयनीय दशा के मूल में छिपे कारणों को जानने का प्रयास किया और पाया कि प्राचीन न्याय शास्त्री जैसे याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद, विष्णु और बृहस्पति आदि ऋषियों ने पुत्री और पत्नी का सम्पत्ति में अधिकार होना स्वीकार किया है किन्तु बाद में भ्रमवश टीकाकारों ने इस अधिकार से नारी को वंचित कर दिया। यही वजह थी कि पति की मृत्यु होने पर पत्नी की आर्थिक और सामाजिक दशा बड़ी ही दयनीय हो जाती थी।

राममोहन राय ने यह भी स्पष्ट किया कि हिन्दू विधवाएँ स्वेच्छा से या धार्मिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने के कारण मृत पति के साथ सती नहीं होती, बल्कि वे अक्सर अपने घर-परिवार में विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों और अपमान को देखकर, असहाय अवस्था में और भविष्य में 'सती देवी' के रूप में सम्मान पाने के लोभ से ही, आत्महत्या हेतु प्रेरित होती है। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दू नारी की इस दुर्दशा का कारण पिता या पति किसी की भी सम्पत्ति में अधिकार न होना था। सन् 1822 में उन्होंने हिन्दू अधिकारों के पक्ष में लिखते हुए कहा था कि प्राचीनकाल में नारी को जो अधिकार प्रदान किये गये थे, मध्य युग में 'दायभाग' आदि ग्रन्थों के बहाने उन अधिकारों को छीन लिया गया था। इन अधिकारों के छिन जाने से ही सती प्रथा, बहुविवाह जैसी कुरीतियाँ प्रचलन में आई।

सती प्रथा उन्मूलन के लिये राममोहन के ठोस प्रयासों के कारण ही लार्ड बैण्टिक ने भी उन्हें इस मसले पर विचार विमर्श हेतु बुलवाया। राममोहन कठोर नियमों एवं पुलिस की सहायता से धीरे-धीरे इस प्रथा को समाप्त करना चाहते थे, जबकि लार्ॅड बेण्टिक सीधे-सीधे कानून बनाकर। राममोहन ने इस पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के प्रति भी लार्ॅड बैण्टिक को सचेत कर दिया था। फिर भी 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा उन्मूलन का कानून पारित कर दिया

 Copyright © 2020 Authors

गया, कानून बनते ही कट्टरपंथियों ने 'धर्मसभा' के माध्यम से हंगामा खड़ा कर दिया और हजारों हस्ताक्षरों से युक्त आवेदन प्रस्तुत किया। राममोहन राय के परामर्श से विलियम बैण्टिक अपने निर्णय पर डटे रहे। उनके इस कार्य पर राममोहन ने सार्वजनिक सभा बुलवाकर उनका अभिनंदन किया। विरोधी खेमे के लोगों ने सती प्रथा उन्मूलन के विरूद्ध पुनः एक आवेदन पत्र तैयार करके इंग्लैंड की प्रिवि काउंसिल में प्रस्तुत किया। राममोहन ने भी ''सती प्रथा निषेध'' के पक्ष में एक याचिका भेजी। जुलाई 1832 में दोनों पक्षों की याचिका सुनने के बाद न्यायाधीशों की सम्मति से सम्राट ने 'धर्मसभा' की अपील खारिज करते हुये सेंट जेम्स की कोर्ट में 11 जुलाई 1832 को यह निर्णय दिया कि सम्राट और प्रिवि काऊंसिल कमेटी ''सती उन्मूलन कानून'' के पक्ष में निर्णय लेते हुए धर्म सभा की अपील खारिज करती है। इस प्रकार एक कुप्रथा पर अंकुश लगाने के प्रयास सफल हुये और धीरे धीरे यह प्रथा समाप्ति की ओर चल पड़ी। आत्मीय सभा और ब्रह्म समाज के साहसिक प्रयासों, अटल इरादों और दृढ़ विश्वास ने एक असम्भव कार्य को संभव कर दिखाया। यह सब संभव हो पाया राममोहन राय के अथक प्रयासों से। उस युग में तो यह कार्य दुष्कर था।

समाज सुधार के कार्यों का बीड़ा उठाकर राममोहन राय ने समाज को सती प्रथा, बहुविवाह, बाल विवाह एवं जाति प्रथा जैसी कुरीतियों से मुक्त करवाने के प्रयास किये और पत्र-पत्रिकाओं एवं लेखों के द्वारा जनमानस को जाग्रत किया। सती प्रथा के अंत के साथ ही भारतीय नारी की दुर्दशा सुधारने के उपाय भी सार्थक सिद्ध हुये। हिन्दू उत्तराधिकार कानून में सुधार करने एवं सम्पत्ति में स्त्री के अधिकार देने हेतु आंदोलन करने वाले उस काल के वे प्रथम व्यक्ति थे। उनके विचार से नारी को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करना ही समस्त सामाजिक बुराईयों की जड़ थी। विधवाओं के संपत्ति में अधिकार के बारे में जनमानस अज्ञानी था। इसी के चलते बहुविवाह का चलन था। क्योंकि पुरुषों को मालूम था कि कितने भी विवाह हो उन्हें अपनी सम्पत्ति के वितरण का कोई खतरा नहीं है।

विधवा विवाह के पक्ष में राममोहन की मंशा जानकर आत्मीय सभा में इस बात पर विचार-विमर्श होता रहा। राममोहन एवं उनके शिष्य इसके प्रबल समर्थक थे। आगे चलकर उनके प्रमुख शिष्य पं. रामचंद्र विद्यावागीश ने विधवा विवाह की जोरदार सिफारिश की और ब्रह्म समाज के सदस्य पं. ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दिलवाने में सफलता प्राप्त की। इस प्रकार राममोहन राय ने उस काल में भी समाज की आत्मा पर पड़े कालिमा के आवरण को हटाकर उसे सत्य के प्रकाश से आलोकित करने का प्रयास किया।

संदर्भ-

1. कार्तिक चन्द्र दत्त-राजा राममोहन रायः जीवन और दर्शनः
2. जमुना नाग-भारत के महान समाज सुधारक राममोहन राय,
3. जे. के. मजूमदार-राजा राममोहन राय एंड प्रोग्रसिव मूवमेण्ट इन इंडियाः
4. बृजेन्द्र नाथ बन्दोपाध्याय-राममोहन रायः
5. इकबाल सिंग-राजा राममोहन रायः
6. एस. डी. कोलेट-लाइफ एंड लेक्चर्स आॅफ राजा राममोहन रायः

 Copyright © 2020 Authors